प्रकरण छह

एक अज्ञात मित्र

चाहे तीव्र बुद्धि नैतिकतावादी मेरे ऊपर भ्रमित होने का आरोप लगाएँ, मुझे कोई परवाह नहीं। वैदिक कार्यों में निपुण मुझे दिग्भ्रमित कहकर बदनाम कर सकते हैं; मित्र और सम्बन्धी मुझे हताश कह सकते हैं; मेरे भाई मुझे मूर्ख कह सकते हैं; लोभी धनाढ्य मुझे पागल कह कर विचित्र कह सकते हैं; और विद्वान दार्शनिक जोर देकर कह सकते है कि मैं बहुत अधिक घमंडी हूँ। इतने पर भी मेरा मन गोविन्द के चरणकमलों की सेवा के संकल्प से एक इंच भी विचलित नहीं होता है, यद्यपि मैं सेवा करने में असमर्थ हूँ।

—माधवेन्द्र पुरी

व्यसाय और परिवार की कठिनाइयों के अतिरिक्त अभय को भारत की स्वतंत्रता और विभाजन की प्रलय से उबरना पड़ा। वे राजनीतिक दृष्टि से क्रियाशील नहीं थे, लेकिन उन लाखों-करोड़ों में से एक थे, जो भारत की स्वतंत्रता के हिंसापूर्ण आगमन से प्रभावित थे।

जबकि गाँधी और हिन्दू-बहुल काँग्रेस संयुक्त स्वतंत्र भारत की माँग कर रहे थे, एम. ए. जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम-लीग का नारा देश के विभाजन और पाकिस्तान के रूप में स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्र का था। संघर्ष प्रबल हो गया। अगस्त १९४६ ई. में देश छोड़ने को तैयार अंग्रेज सरकार ने काँग्रेस दल के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू को अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार गठन करने के लिए आमंत्रित किया; लेकिन लीग ने आपत्ति की—इससें मुस्लिम-हित पूरा नहीं होगा। जिन्ना १६ अगस्त को 'सीधी कार्यवाही दिवस' पहले ही घोषित कर चुके थे, जिसका भारत के अधिकांश भागों में कोई असर नहीं हुआ, लेकिन कलकत्ता में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। पाँच दिन के दंगे में चार हजार लोग मारे गये और हजारों

घायल हुए। बाद के महीनों में सारे भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे बार-बार होते रहे।

१९४७ ई. के आरम्भ में जब नये वायसराय लार्ड माउन्टबेटेन सत्ता-हस्तान्तरण की योजना बनाने के लिए राजनैतिक नेताओं से मिले, तब दंगे फिर भड़क उठे, क्योंकि मुसलमानों की ओर से पाकिस्तान की माँग थी। गृह-युद्ध के डर से काँग्रेस अन्त में विभाजन पर राजी हो गई और १८ जुलाई को भारतीय स्वतंत्रता का बिल निर्विरोध पारित हो गया। एक मास बाद भारत और पाकिस्तान का स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में जन्म हुआ और जवाहरलाल नेहरू भारत के पहले प्रधानमंत्री बने।

विभाजन ने भारत को छिन्न-भिन्न कर दिया; पचास लाख सिख और हिन्दू पाकिस्तान में रह गये और इतने ही मुसलमान भारत में। और विशाल स्थानान्तरण आरम्भ हो गया। पाकिस्तान से हिन्दुस्तान को और हिन्दुस्तान से पाकिस्तान को भागते हुए शरणार्थी आपस में टकरा गये; अपने ही देश के विरोधी धर्मावलम्बियों के संहार में भी लोग जुट गये और इस प्रकार हिंसा का जो दौर शुरू हुआ, उसमें लाखों लोग मारे गये।

श्रील प्रभुपाद : *हमारी स्वतंत्रता का आन्दोलन गाँधीजी ने जनता के विभिन्न वर्गों को जोड़ने के लिए आरम्भ किया था। लेकिन वास्तव में परिणाम यह हुआ कि जुड़ने के स्थान पर भारत का विभाजन हो गया। और विभाजन इतना विषाक्त हो गया कि जहाँ पहले हिन्दू-मुसलमानों में कुछ स्थानों में छिट-पुट दंगे होते थे, वहाँ अब पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच आयोजित संघर्ष होने लगा। इसलिए हम वास्तव में जुड़ नहीं रहे थे, वरन् अलग हो रहे थे।*

हिन्दू मुसलमानों की मस्जिद में जाकर उसका विध्वंस कर देते, और मुसलमान हिन्दुओं के मन्दिरों में घुसकर मूर्तियाँ भंग कर देते। और वे सोचते, "हमने हिन्दुओं के भगवान् को समाप्त कर दिया है।" उसी तरह हिन्दू भी सोचते, "ओह, हमने उनके खुदा को खतम कर दिया है।" वे सभी अज्ञानी हैं। भगवान् न तो हिन्दू हैं और न मुसलमान हैं, भगवान् न ईसाई हैं। भगवान् भगवान् हैं।

१९४७ ई. में हमने हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष देखा है। एक दल हिन्दुओं का था, दूसरा मुसलमानों का। वे आपस में लड़े और उनमें से बहुत से मारे गये। मृत्यु के बाद उनमें कोई भेद नहीं रह गया कि कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान—म्युनिसिपैलिटी के आदमियों ने उन्हें ढेर में इकट्ठा किया और ले जाकर कहीं फेंक दिया। वे आपस में लड़े, और बागबाजार में लाशों के ढेर लग गये। और लाशों में इसकी पहचान नहीं रह गई कि कौन सी हिन्दू की है और कौन सी मुसलमान की। उन्हें तो सड़क से हटा देना था।

अभय को आशा नहीं थी कि भारतीय स्वतंत्रता से कोई वास्तविक समाधान प्राप्त होगा। जब तक कि नेताओं में भागवत्-चेतना न हो, तब तक क्या परिवर्तन हो सकता है?

उन्होंने देखा कि विदेशी-शासन के अधीन दुख भोगने के स्थान पर, जनता अब अपने ही देशवासियों के अधीन दुख भोगने को स्वतंत्र हुई थी। वास्तव में संघर्ष और दुख में पहले से वृद्धि हो गई थी।

भारत के राजनैतिक संघर्षों के दौर में अभय की कृष्णभावनामृत के प्रसार की इच्छा कभी समाप्त नहीं हुई थी। उन्होंने देखा था कि एकता और स्वतंत्रता के वादों से किस प्रकार अधिकतर मूल्यों में वृद्धि हुई थी और कुप्रबन्ध बढ़ा था। उन्होंने ऐसे मोहल्ले देखे थे, जहाँ भारतवासी पीढ़ियों से शान्तिपूर्वक इकट्ठे रहते आये थे, लेकिन अंग्रेजों और भारतीयों की कूटनीतिक चालबाजी के फलस्वरूप वहाँ अब घृणा और दंगों की आग भड़क उठी थी। जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने वर्णन किया था :

> जो लोग भौतिक सुख-भोग की चेतना से बुरी तरह जकड़े हैं और इसलिए जिन्होंने ऐसे लोगों को अपना नेता या गुरु मान लिया, जो उन्हीं की तरह बाह्य रूप से इन्द्रियासक्त होकर ज्ञानान्ध हो चुके हैं, वे इस बात को नहीं समझ सकते कि जीवन का लक्ष्य भगवान् के धाम में लौटकर श्री विष्णु भगवान् की सेवा करना है। जिस प्रकार एक अंधा मनुष्य दूसरे अंधे मनुष्य का अनुगमन करके सही रास्ता खो देता है और गड्ढे में जा गिरता है, उसी प्रकार भौतिकता में बँधे मनुष्य जो किसी ऐसे मनुष्य का अनुसरण करते है, जो स्वयं भौतिकता के पाश में बँधा है, कर्म-फल की रज्जुओं में जकड़ जाते हैं, जो बड़े मजबूत धागों से बनी होती है और उन्हें बार-बार इस भौतिक जगत में जन्म लेकर तीनों ताप सहने पड़ते हैं।

वैष्णव अपने आध्यात्मिक गुरु से प्रार्थना करता है, "जिन्होंने दिव्य ज्ञान के आलोक से मेरे नेत्र खोल दिए हैं," और वह उस आलोक से मानवता की सहायता करना अपना दायित्व मानता है। शाश्वत वैष्णव परम्परा के प्रतिनिधि के रूप में अभय उस भव्य ज्ञान के आलोक-पुंज से वर्तमान संकटों के क्षेत्र को आलोकित कर देना चाहते थे। *बैक टु गॉडहेड* का यही उद्देश्य था, यद्यपि १९४४ ई. से वे यह पत्रिका प्रकाशित नहीं कर सके थे।

किन्तु पत्रिका प्रकाशित करने का साधन न होते हुए भी अभय ने लिखना जारी रखा। उनकी सबसे बड़ी आकांक्षापूर्ण योजना *गीतोपनिषद्* नाम से *भगवद्गीता* का अनुवाद और उसकी टीका लिखने की थी। गाँधीजी और अन्य लोग प्राय: गीता के ज्ञान की चर्चा करते थे—भारतीय अपनी *गीता* को कभी भूलते नहीं थे—लेकिन गीता के समर्थकों और प्रचारकों ने उसे कभी उस रूप में नहीं सिखाया, जिस रूप में कृष्ण ने सिखाया था। भगवान् कृष्ण को, जो गीता के उपदेशकर्ता थे, परम भगवान् के रूप में उन्होंने स्वीकार

नहीं किया; वरन् उनके वचनों को वे केवल अपनी दार्शनिक विचार-धाराओं के समर्थन में नारे के रूप में प्रयुक्त करते रहे थे। चाहे वे राजनैतिक नेता रहे हों, धार्मिक नेता रहे हों या विद्वान रहे हों, गीता की व्याख्या वे सदा अपने ही प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से करते रहे थे। अभय गीता को उस रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे, जैसी कि वह है। वे कुल १२०० पृष्ठ रखना चाहते थे—चित्रित और सुन्दर तीन जिल्दों में बंधे हुए। अभय के लिए वे पुस्तकें वास्तविकता बन चुकी थीं, दोनों के बीच केवल समय का व्यवधान था।

दो वर्षों में उनके पास पाण्डुलिपि के सैकड़ों पृष्ठ इकट्ठे हो गये थे। वे नोटबुकों में और अलग-अलग कागजों पर लिखते थे, और तब पृष्ठ-संख्या डालकर पाण्डुलिपि को टाइप कर लेते थे। वे पुस्तक को अपना पूरा समय नहीं दे पा रहे थे, लेकिन धीरे-धीरे वह रूप ग्रहण करने लगी थी।

अभय भगवान् चैतन्य के सन्देश के प्रचार के लिए सरकारी नेताओं को, सम्मानित परिचितों को और उन लोगों को पत्र लिखते थे जिनके लेख वे पढ़ चुके थे या समाचार-पत्रों में प्रकाशित जिनके क्रियाकलापों पर उनकी दृष्टि जाती थी। अपने को एक विनम्र सेवक के रूप में प्रस्तुत करते हुए वे अपने विचारों को व्यक्त करते कि किस प्रकार भारत की मौलिक कृष्णभावनामृत पूर्ण संस्कृति का प्रयोग सभी प्रकार की द्विविधाओं के समाधान में किया जा सकता है। कभी-कभी उनके पत्रों के उत्तर भी आते थे और अभय जहाँ भी इस विषय में रुचि देखते थे, उसे बढ़ावा देने में वे तुरन्त तत्पर हो जाते थे और उन उत्तरों के प्रत्युत्तर में फिर पत्र लिखते थे।

एक सुप्रसिद्ध सुधारक, महेन्द्र प्रताप राजा एक संस्था बना रहे थे, जिसे वे विश्व-संघ (वर्ल्ड फेडरेशन) कहते थे। अमय ने श्री महेन्द्र प्रताप द्वारा वृन्दावन से प्रकाशित सूचना-पत्र पढ़ा था, जिसे उन्होंने सभी राष्ट्रों और विश्व की सभी जातियों को सम्बोधित किया था और जिसमें मानव जाति की एकता के लिए आवाज उठाई थी।

अभय ने उन्हें लिखा और सुझाव दिया कि *भगवद्गीता* में अंकित भगवान् कृष्ण के उपदेश सभी धर्मों को जोड़ने वाला एक ईश्वरवादी विज्ञान प्रदान करते हैं। श्री महेन्द्र प्रताप ने मई १९४७ ई. में उन्हें जवाब दिया, "मैं *श्रीमद् भगवद्गीता* के आपके गहरे अध्ययन की प्रशंसा करता हूँ। मैं. स्वयं भी उस महान् प्राचीन ग्रंथ का प्रशंसक हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उसी के अनुरूप कार्य कर रहा हूँ।" श्रीमान् प्रताप ने अपनी पुस्तक *रिलीजन आफ लव* (प्रेम का धर्म) का उल्लेख किया और सुझाव दिया कि यदि अभय धर्म के विषय में विश्वसंघ का दृष्टिकोण जानना चाहते हों, तो वे उस पुस्तक को पढ़ें। इसी दौरान, श्रीमान् प्रताप ने लिखा, "मैं आपके इस सुझाव को स्वीकार नहीं करता कि 'कृष्ण' या 'गोविन्द' के नाम को धर्मों की एकता का आधार बनाया जाये। इसका

आशय धर्म-परिवर्तन होगा और इससे धर्मों की एकता कायम नहीं होगी। *बैक टु गॉडहेड* की दिशा में मैं आपके प्रयत्नों की बहुत सराहना करता हूँ।"

अभय ने श्री महेन्द्र प्रताप की पुस्तक प्राप्त की और उसे पढ़ डाला और जुलाई १९४७ ई. में जब वे कानपुर के दौरे पर गये थे, उन्होंने उसका उत्तर भेजा। वे कानपुर आध्यात्मिक शिक्षक के रूप में नहीं, वरन् दवाओं के विक्रेता के रूप में गये थे। लेकिन वहाँ एक टाइपराइटर उपलब्ध था और उनके प्रचार का रूप प्रकट हो गया।

> अपने पिछले पोस्टकार्ड के अनुक्रम में, मैं आपको सविनय सूचित करता हूँ कि मैंने आपकी पुस्तक 'रिलीजन आफ लव' पूरी पढ़ डाली है। मेरे मत से पुस्तक का प्रतिपाद्य बहुदेववाद की विचार-धारा पर आधारित है और उसका उपागम मनुष्य जाति की सेवा है। प्रेम का धर्म सच्चा धार्मिक विचार है, लेकिन यदि इस विषय के प्रति उपागम केवल मनुष्य जाति की सेवा के माध्यम से होता है, तो प्रक्रिया अपूर्ण, अधूरी और अवैज्ञानिक हो जाती है।
>
> सच्चे प्रेम का धर्म *भगवद्गीता* में पूर्णत: समाहित है... इसके अतिरिक्त आपने अपने कथन के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं दिया है। इसलिए यह न्यूनाधिक मात्रा में हठधर्मी है। यदि भिन्न भिन्न व्यक्ति धर्म और उसके आवश्यक तत्त्वों के विषय में भिन्न-भिन्न हठधर्मी विचार रखते हैं, तो किसे स्वीकार किया जाये और किसे न किया जाये? इसलिए उपागम अनिवार्यत: प्रामाणिक, वैज्ञानिक और विश्वजनीन होना चाहिए।

तत्पश्चात् अभय ने दस-बिन्दुओं में *भगवद्गीता* का सारांश दिया और अन्त में लिखा, "मनुष्य जाति की सबसे बड़ी सेवा यही हो सकती है कि *भगवद्गीता* के दर्शन और धर्म का प्रचार सब समय, सब जगहों में और सभी लोगों में किया जाये।"

लेकिन उनके पत्रों का परिणाम आमतौर पर लम्बा दार्शनिक संवाद नहीं होता था। १९४७ ई. में जब अभय ने भारत की नव-गठित सरकार के ऊँचे अधिकारियों को दंगे बन्द करने के सुझाव देते हुए पत्र लिखा, तो उन्होंने उनको टाल दिया। जब उन्होंने पश्चिम बंगाल के गवर्नर से बात करने की माँग की, तो गवर्नर के सचिव ने उत्तर दिया, "महामहिम को खेद है कि कार्य के भारी दबाव के कारण वे आपको इस समय साक्षात्कार देने में असमर्थ हैं।" जब उन्होंने शिक्षा-मंत्री के सहायक सचिव को लिखा तो सहायक सचिव के एक सहायक ने उत्तर दिया, "भारत सरकार को खेद है कि वह आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकती।" कभी-कभी सरकारी रुझान सिर पर संरक्षणात्मक थपकी का

रूप ग्रहण करता था जैसे, "मुझे विश्वास है कि शान्ति स्थापित करने की आपकी योजना प्रधानमंत्री की सहानुभूति प्राप्त करेगी।" एक अन्य ने लिखा, "उन्हें (शिक्षामंत्री को) प्रसन्नता है कि आप साम्प्रदायिकता को समाप्त करने का संकल्प ले रहे हैं। उनका सुझाव है कि आप... से सम्पर्क करें।"

एक स्थानीय अधिकारी ने मिलने से मना कर दिया :

> आपने जो कुछ लिखा है और जो सुन्दर भाव प्रकट किये हैं, उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इस विषय में तर्क या वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मेरे विचार में आप जो संस्था स्थापित करना चाहते हैं, उससे जुड़कर मैं कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकूँगा। इसलिए आप मुझसे मिलने का कष्ट न करें। फिर भी, मैं आपकी सफलता की कामना करता हूँ।

१९४७ ई. के कलकत्ता के दंगों के बाद अभय ने अक्टूबर में पुनर्वास समिति के अध्यक्ष को लिखा। उनका उत्तर था :

> जहाँ तक हरि कीर्तन और प्रसाद का प्रश्न है, आप अपना कोई भी कार्यक्रम बना सकते हैं, लेकिन मुझे खेद है कि उसमें मेरी कोई रुचि नहीं है। मेरी समिति के बारे में भी यही बात है, और इसलिए आपको मुझसे मिलने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अभय एक वैष्णव प्रचारक की भूमिका सम्पन्न कर रहे थे और विभिन्न सरकारी विभागों के सचिव उनको इस रूप में स्वीकार करके जवाब देते थे। लेकिन वे *भगवद्गीता* के दर्शन के उनके उपयोगों को और हरि-कीर्तन सम्बन्धी उनके सुझावों को समझ नहीं पाते थे। परन्तु एकाध ऐसे भी थे, जिनको उन में रुचि थी। हाईकोर्ट के ऐडवोकेट श्री एन. पी. अस्थाना ने उत्तर दिया :

> मैं आपके पत्र के लिए बहुत आभारी हूँ, जिसमें आपने आध्यात्मिक विकास के लिए मोटे तौर पर अपनी योजना बताई है। जिस सद्भाव के साथ आपने यह पत्र लिखा है और मेरी जिज्ञासा पर कृपापूर्वक विचार किया है, उसकी मैं पूरी तरह सराहना करता हूँ। मैं *भगवद्गीता* का अध्येता रहा हूँ और उसकी कुछ शिक्षाओं को मैंने आत्मसात् भी किया है। लेकिन मुझमें अब भी बहुत सी कमियाँ हैं और

आप जैसे निष्णात व्यक्ति से मार्गदर्शन पाने में मुझे प्रसन्नता होगी। इसलिए आप कृपा करके अपनी योजना मुझे भेजें। उसके मिलने पर मैं उसके बारे में अपनी राय लिखने में समर्थ हूँगा।

• • •

यह तो अनिवार्य ही था कि अभय महात्मा गाँधी को भक्ति मार्ग में लगाने की बात सोचें। अपने देशवासियों की ओर से जीवन-भर साहसपूर्ण, वैरागी, नैतिक कार्यकलापों में लगे होने के कारण महात्मा गाँधी में देश की जनता को प्रभावित करने की बहुत शक्ति थी। वर्ल्ड फेडरेशन के संस्थापक महेन्द्र प्रताप की तरह महात्मा गाँधी का विचार राजनीति और अपने द्वारा अन्वेषित उपायों से मनुष्य को सुखी बनाकर भगवान् की सेवा करना था। जैसाकि एक अँग्रेज ने महात्मा गाँधी के विषय में कहा था, "वे या तो राजनीतिज्ञों के मध्य एक संत हैं या संतों के मध्य एक राजनीतिज्ञ।" जो भी हो, वे अभी तक शुद्ध भक्ति में नहीं लगे थे और उनके कार्यकलाप *भगवद्गीता* में वर्णित एक महात्मा के कार्यकलाप नहीं थे। गीता में *महात्मा* की जो परिभाषा दी गई है, उसके अनुसार महात्मा वह है जो भगवान् कृष्ण को परम तत्त्व स्वीकार करके पूरी तरह उनकी भक्ति और गुण-गान में अनुरक्त हो। महात्मा दूसरों को प्रोत्साहित करता है कि वे कृष्ण के प्रति समर्पित हों।

किन्तु, चूँकि युवक के रूप में अभय गाँधी के अनुयायी रह चुके थे, इसलिए उनके प्रति उनके मन में विशेष भावना थी। निस्सन्देह, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने बाद में अभय को केवल भक्ति के मार्ग में अनुरक्त रहने के लिए मना लिया था; किन्तु अभय को अब गाँधी के साथ अपनी पुरानी मित्रता का एहसास हुआ, यद्यपि अब गाँधी विश्वविख्यात एक महापुरुष बन चुके थे और अभय को न गाँधी जानते थे, न संसार के अन्य लोग।

७ दिसम्बर १९४७ ई. को अभय ने कानपुर से गाँधी को लिखा। गाँधी उस समय बिड़ला-भवन, दिल्ली में रह रहे थे, जहाँ सारे नगर में सेना के असंख्य जवान हिन्दू-मुस्लिम दंगों को रोकने में लगे थे। गाँधी के सचिव, प्यारेलाल नय्यर ने गाँधी के बारे में लिखते हुए कहा कि वे उस समय "सबसे दुखी मनुष्य थे, जिसकी कोई भी कल्पना की जा सकती है।" जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल और अन्य लोग, जो भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष में गाँधीजी के अनुयायी थे, अब राष्ट्र का नेतृत्व ग्रहण कर चुके थे। और गाँधीजी का अपने अहिंसा, एकता और किसानों से सम्बन्धित सिद्धान्तों के कारण कई अर्थों में इन नेताओं से मेल नहीं बैठ रहा था। उन्हें डर था कि अब वे अप्रासंगिक हो गये थे। उनके पहले सहयोगी उनकी प्रशंसा करते थे, लेकिन उनके नेतृत्व से इनकार करते थे। उनके सारे कार्यक्रम—हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अहिंसा, दरिद्रों का उत्थान आदि—यद्यपि

संसार-भर में प्रशंसित थे, १९४७ ई. के भारत में विफल हो रहे थे। हाल में जब वे एक मुस्लिम-शरणार्थी शिविर देखने गये थे, तो मुसलमानों की एक भीड़ ने उनकी कार को घेर लिया था और उन्हें अपशब्द कहे थे, और एक सार्वजनिक प्रार्थना-सभा में जब उन्होंने कुरान से पढ़ने का प्रयत्न किया था, हिन्दुओं की भीड़ ने शोर-गुल करके कुरान-पाठ बन्द करवा दिया था और सभा भंग कर दी थी। अठहत्तर-वर्षीय गाँधी शरीर से कमजोर हो गये थे और मन से खिन्न।

अधिकतर सम्भावना यही थी कि अभय का पत्र गाँधी तक कभी नहीं पहुँचेगा। अभय इसे जानते थे। गाँधी को पत्र भेजना उसी तरह था, जैसे एक बोतल में पत्र रखकर उसे सागर के माध्यम से भेजना। पत्रों की बाढ़ में वह पहुँचेगा और गाँधी को उसे देखने की फुर्सत नहीं होगी। फिर भी अभय ने पत्र भेजा।

> प्रिय मित्र महात्माजी,
>
> कृपया मेरा विनम्र नमस्कार स्वीकार करें। मैं आपका एक अज्ञात मित्र हूँ। लेकिन मुझे आपको कभी कभी लिखना पड़ा, यद्यपि आपने कभी भी उत्तर देने की परवाह नहीं की। मैंने आपको अपनी पत्रिका *बैक टु गॉडहेड* भेजी, लेकिन आपके सचिवों ने लिखा कि आपके पास मेरे पत्र पढ़ने को समय नहीं है, पत्रिका की तो बात ही क्या। मैंने आपसे साक्षात्कार की माँग की, लेकिन आपके व्यस्त सचिवों ने इसका उत्तर देने की भी परवाह नहीं की। जो भी हो, आपका एक बहुत पुराना मित्र होने के नाते यद्यपि आप मुझे नहीं जानते, मैं आपको इसलिए लिख रहा हूँ कि आपके योग्य जो उपयुक्त स्थिति है, उससे आपको अवगत कराऊँ। एक सच्चे मित्र के रूप में आप जैसे भले आदमी के प्रति अपने कर्तव्य से मैं अपने को विरत नहीं होने दूँगा।
>
> एक सच्चे मित्र के रूप में मैं आप से कहता हूँ कि यदि आप अपमानजनक मौत नहीं मरना चाहते, तो आप सक्रिय राजनीति से तुरन्त अवकाश ग्रहण कर लें। आपको १२५ वर्ष जीवित रहना है, जैसी कि आपकी इच्छा है। लेकिन यदि आपको अपमानजनक मौत मिली, तो सब बेकार हो जायेगा। अपने वर्तमान जीवन में आपने जो सम्मान और गौरव प्राप्त किया है, वह स्मरणीय अवधि में किसी अन्य द्वारा प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ है। किन्तु आपको जानना चाहिए कि ये सारे सम्मान और गौरव मिथ्या हैं, क्योंकि वे भगवान् की माया-शक्ति से सृजित हैं। लेकिन इस मिथ्यावाद से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि आपके इतने सारे मित्र आपके प्रति झूठे थे या आप उनके प्रति झूठे थे। इस मिथ्यावाद से मेरा तात्पर्य यह है कि

मिथ्या मित्रता और उसके द्वारा प्राप्त सम्मान माया की सृष्टि है, इसलिए वे क्षणिक और मिथ्या है। लेकिन इस सत्य को न आप जानते हैं, न आपके मित्र।

एक साधु से चाटुकारी की अपेक्षा नहीं की जाती, वह कड़वी बात कहता है। उसकी मित्रता का आधार यही है कि वह सांसारिकता में लिप्त व्यक्ति की माया का परदा हटा देता है। महात्मा गाँधी को उनके मित्रों ने छोड़ दिया था; भारत की स्वतंत्रता के लम्बे, कड़े संघर्ष के परिणाम से उन्हें निराशा हुई थी; भविष्य के प्रति वे शंकालु थे; अब उनकी स्थिति ऐसी हो गई थी, जिसमें वे अनुभव कर सकते थे कि उनके मित्र और उनका कार्य सभी अन्ततः माया-जनित थे। अतएव अभय के सन्देश को समझने का उनके लिए यही ठीक समय था।

ईश्वर की कृपा से वह माया अब दूर होने जा रही है और इसलिए आचार्य कृपलानी और उन जैसे आपके अन्य विश्वसनीय मित्र आप पर दोष लगा रहे हैं कि आप उन्हें इस समय कोई ऐसा व्यावहारिक कार्यक्रम देने में असमर्थ हैं, जैसाकि असहयोग आन्दोलन के गौरवास्पद दिनों में आपने दिया था। अतएव अपने विरोधियों द्वारा पैदा की गई वर्तमान राजनैतिक उलझन में एक ठीक समाधान खोज निकालने में आप भी कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं। इसलिए मुझ जैसे नगण्य मित्र से आपको चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए कि यदि समय रहते आप राजनीति से अवकाश नहीं ग्रहण कर लेते और *भगवद्गीता* के शतप्रतिशत प्रचार में नहीं लग जाते, जो कि महात्माओं का असली कार्य है, तो आपको वैसी ही अपमानजनक मृत्यु मिलेगी, जैसी कि मुसोलिनी, हिटलर... या लायड जार्ज को मिली थी।

वर्षों से अभय इस सन्देश को महात्मा गाँधी तक पहुँचाना चाहते थे। वास्तव में वे पहले भी लिख चुके थे, लेकिन उसका कोई फल नहीं हुआ था। परन्तु अब उन्हें विश्वास हो गया था कि यदि गाँधी राजनीति से बाहर नहीं आ जाते, तो शीघ्र उन्हें "लज्जास्पद मृत्यु" मिलेगी। गाँधी अब भी सक्रिय राजनीति में बने थे और भक्ति का प्रचार नहीं कर रहे थे, इसलिए उन्हें चेतावनी की जरूरत थी। अभय एक मित्र को बचाने के लिए लिख रहे थे।

आप आसानी से समझ सकते हैं कि किस प्रकार मित्र का भेष बनाकर आपके कुछ राजनैतिक शत्रुओं ने (जिनमें भारतीय और अंग्रेज दोनों हैं) जान-बूझकर आपको धोखा दिया है और उन्होंने ऐसा दुष्कृत्य करके आपका दिल तोड़ दिया है,

> जिसके विरुद्ध आप इतने वर्षों से संघर्ष करते रहे हैं। मुख्य रूप से आप भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता चाहते थे, लेकिन पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की अलग-अलग रचना करके उन्होंने चालाकी से आपके किये पर पानी फेर दिया है। आप भारत के लिए स्वतंत्रता चाहते थे, लेकिन उन्होंने इसे स्थायी रूप से परतंत्र बना दिया है। आप भंगियों के उत्थान के लिए कुछ करना चाहते थे, लेकिन वे अब भी भंगियों की तरह ही पिस रहे हैं, यद्यपि आप भंगी-कालोनी में रहते हैं। इसलिए यह सब कुछ मिथ्या है और जब आपके सामने अब वस्तुस्थिति स्पष्ट की जाए, तब आपको चाहिए कि उसे ईश्वर-प्रदत्त समझकर उस पर विचार करें। जिस माया में आप पड़े रहे हैं, उसे समाप्त करके भगवान् ने आप पर कृपा की है; उसी माया के वशीभूत होकर आप उन धारणाओं को सत्य समझते रहे हैं।

अभय ने कर्तव्य-वश गाँधी को यह समझाने का प्रयत्न किया कि इस आपेक्षिक संसार में निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। अहिंसा के बाद हिंसा वैसे ही अनिवार्य है, जैसे प्रकाश के बाद अंधकार का होना। इस द्वैत संसार में निरपेक्ष सत्य जैसी कोई वस्तु नहीं है। अभय ने लिखा, "आप इसे नहीं जानते थे और उपयुक्त स्रोतों से आपने इसे जानने की परवाह भी नहीं की, और इसलिए एकता स्थापित करने के आपके सारे प्रयत्न अनैक्य में और अहिंसा के प्रयत्न हिंसा में बदलते रहे।"

अभय ने संकेत किया कि गाँधी आध्यात्मिक उन्नति के लिए, मानक अभ्यास, दूसरे शब्दों में एक सच्चे आध्यात्मिक गुरु की स्वीकृति की क्रिया से कभी नहीं गुजरे। यद्यपि *भगवद्गीता* ने गुरु-परम्परा में एक गुरु की स्वीकृति की आवश्यकता पर बल दिया है, गाँधी के बारे में तो यही प्रसिद्ध था कि वे अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनते हैं और रस्किन तथा थूरो जैसे विभिन्न लेखकों से विचार लेकर उनका मिश्रण बाइबिल और गीता की शिक्षाओं से करते हैं। अभय ने कहा कि यदि गाँधी ने एक गुरु को स्वीकार किया होता, तो वे आपेक्षिक सत्य के क्षेत्र में इतना द्विविधा-ग्रसित न होते।

> कठ उपनिषद् में ऐसा आदेश है कि परम सत्य का विज्ञान सिखने के लिए मनुष्य को ऐसे अधिकृत गुरु की शरण में जाना चाहिए, जो न केवल संसार के सभी धर्मशास्त्रों में निष्णात हो, वरन् जो परम ब्रह्म में आत्म-सिद्ध भी हो। *भगवद्गीता* (४.३४) में भी ऐसा ही निम्नलिखित आदेश है।
>
> *तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।*
> *उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥*

लेकिन मुझे मालूम है कि आपको ऐसी दिव्य शिक्षा कभी नहीं मिली। आपने केवल कुछ कठोर व्रत किये हैं, जिनका आविष्कार आपने अपने उद्देश्यों के लिए किया था; ठीक वैसे ही जैसे आपेक्षिक सत्य के प्रयोग के सिलसिले में आपने बहुत-सी चीजों का आविष्कार किया था। आप उनसे आसानी से बच सकते थे, यदि आप, जैसाकि कहा गया है, गुरु की शरण में गये होते।

महात्मा गांधी के देव-तुल्य गुणों और तपस्या-पूर्ण जीवन को मान्यता देते हुए अभय ने उनसे प्रार्थना की कि वे अपनी नैतिक ऊँचाई को परम सत्य के प्रति अर्पित कर दें। अभय ने जोर दिया कि वे राजनीति तुरन्त छोड़ दें।

लेकिन कठोर जीवन-यापन आदि द्वारा देव-तुल्य गुणों को प्राप्त करने के आपके सच्चे प्रयत्नों ने आपको ऐसे उच्च स्तर पर आसीन कर दिया है, जिसका उपयोग अच्छा हो कि आप परम सत्य के उद्देश्य से करें। किन्तु यदि आप अपनी इस अस्थायी स्थिति से ही सन्तुष्ट रहते हैं और परम सत्य को जानने की चेष्टा नहीं करते, तो निश्चय ही आप प्रकृति के नियमों के अन्तर्गत अपनी कृत्रिम उच्च स्थिति से गिर जायेंगे। लेकिन यदि आप सचमुच परम सत्य तक पहुँचना चाहते हैं और विश्वभर में आम जनता का वास्तव में कुछ हित करना चाहते हैं, जिसके अन्तर्गत आपके एकता, शान्ति, और अहिंसा के विचार निहित हैं, तो आपको यह सड़ियल राजनीति तुरन्त छोड़ देनी होगी और *भगवद्गीता* के दर्शन और धर्म का उसकी अनावश्यक और हठधर्मी व्याख्या किये बिना प्रचार करना होगा। समय-समय पर मैंने इस विषय पर अपनी पत्रिका, *बैक टु गॉडहेड* में विचार व्यक्त किये हैं। सन्दर्भ के लिए उसका एक पन्ना संलग्न कर रहा हूँ।

मै प्रार्थना करता हूँ कि कम से कम एक मास के लिए आप राजनीति से अवकाश ले लें और हम दोनों मिलकर *भगवद्गीता* पर चर्चा करें। मुझे विश्वास है कि इस चर्चा के परिणामस्वरूप आपको एक नई ज्योति मिलेगी, जिससे न केवल आपको, वरन् सारे संसार को लाभ होगा—क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप सत्यनिष्ठ, ईमानदार और नैतिकतावादी है।

आपके उत्तर की उत्कण्ठापूर्ण प्रतीक्षा में
आपका सद्भावी, अभयचरण दे

कोई उत्तर नहीं आया। एक मास बाद गांधी ने घोषणा की कि यदि भारत पाकिस्तान

को ५५ करोड़ रुपए नहीं देता, जो विभाजन समझौते की एक शर्त थी, तो वे आमरण उपवास करेंगे। पहले तो पाकिस्तान से आये हिन्दू-शरणार्थियों ने गांधीजी के अंधेरे कमरे के बाहर प्रदर्शन किया और नारे लगाए कि 'गांधी को मरने दो,' लेकिन जब गांधी ने उपवास आरम्भ किया और वे प्रतिदिन मृत्यु के अधिक निकट पहुँचने लगे, तो सारे राष्ट्र को उससे घोर चिन्ता हुई और सरकारी नेताओं ने पाकिस्तान को धनराशि दे दी। तब अपार भीड़ उनके इर्द-गिर्द उमड़ने लगी, इस नारे के साथ कि "गांधी जिन्दा रहें;" उधर हिन्दू-मुस्लिम दंगे चलते रहे।

कांग्रेस दल के लिए नया संविधान बनाने के एक दिन बाद, ३० जनवरी १९४८ को गाँधी ने शाम का भोजन किया, चर्खा चलाया, तब वे संध्या की प्रार्थना सभा के लिए चले और उनके सीने में तीन गोलियाँ दाग दी गईं। 'हे राम' कहते हुए उन्होंने अन्तिम साँस ली। अभय का एक मास पूर्व का पत्र भविष्यवाणी-सा लगा। लेकिन उसे वह व्यक्ति नहीं पढ़ सका था, जिसके लिए वह लिखा गया था।

• • •

जब 'महात्मा गांधी स्मारक राष्ट्रीय निधि' के संचालकों ने सुझाव आमंत्रित किये कि गाँधी के जीवन और कार्य का स्मारक कैसा बनाया जाये, तो अभय ने निधि का 'गाँधीवादी तरीके' से उपयोग करने का सुझाव देते हुए उन्हें लिखा; साथ ही भारत के उप-प्रधानमंत्री वल्लभभाई पटेल को भी उन्होंने लिखा :

> गाँधी का पूरा जीवन सम्पूर्ण मानवता की सेवा को अर्पित था; उनकी विशेष रुचि नैतिक मापदण्ड उठाने में थी। उनके बाद के कार्यकलापों से स्पष्ट था कि वे सभी लोगों के लिए समान थे और संसार के लोग उन्हें केवल राजनीतिज्ञ की अपेक्षा उन्हें आध्यात्मिक नेता के रूप में अधिक जानते थे। भगवान् के प्रति भक्ति उनका चरम लक्ष्य था, और जब मैं कहता हूँ कि उनका पवित्र स्मारक साधारण ढंग से नहीं बल्कि गाँधीवादी ढंग से बनाया जाना चाहिए, तो मेरा तात्पर्य यह है कि उनकी स्मृति के प्रति उपयुक्त सम्मान प्रकट करने की विधि निम्नवत् होगी।

अभय ने महात्मा गाँधी का ऐसा वर्णन किया, जैसा शायद ही कभी हुआ हो : अर्थात् गाँधी एक वैष्णव के रूप में। राजनीतिक कार्यकलापों की व्यस्तता के बावजूद गाँधीजी शाम की प्रार्थना-सभा में कभी नागा नहीं होने देते थे। अपनी हत्या के दिन भी वे नैत्यिक कीर्तन में सम्मिलित होने जा रहे थे। अभय ने इस बात पर जोर दिया कि मानवता का

नैतिक स्तर उठाने की गाँधीजी की शक्ति उनके नित्य सामूहिक प्रार्थना-सभा में भाग लेने के कारण थी। अभय ने लिखा, "गाँधीजी से उनके आध्यात्मिक क्रियाकलाप निकाल दें, तो वे एक साधारण राजनीतिक रह जाते हैं। किन्तु वे सचमुच राजनीतिज्ञों में एक संत थे।..." अभय ने लिखा कि कृष्ण और राम के नामों के सामूहिक गुण-गान का आरम्भ भगवान् चैतन्य ने किया था और उनके अनुयायी ६ गोस्वामियों ने चर्चा और तत्त्व-बोध के लिए अमूल्य साहित्य की सृष्टि की। स्मारक निधि मण्डल को चाहिए कि महात्माजी के वास्तविक जीवन से यह सबक ले और इसका प्रचार विस्तृत स्तर पर करे। इसलिए महात्मा गाँधी का एक उपयुक्त स्मारक यह होगा कि *भगवद्गीता* के नित्य सामूहिक पाठ का आयोजन हो। जब लोगों में नित्य की प्रार्थना-सभाओं से आध्यात्मिक भावनाओं का संचार होगा, तब उनके चरित में सर्वोच्च गुण अपने से विकसित हो जायेंगे।

अभय को एक दूसरा सुझाव भी देना था। गाँधी के बारे में यह सर्वविदित था कि वे हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के लिए सदा प्रयत्नशील थे और उन्होंने नोआखाली में सामान्य लोगों द्वारा उपासना के लिए राधा-कृष्ण के विग्रह की स्थापना की थी। यद्यपि आमतौर पर यह माना जाता था कि यह गाँधी के कार्य का एक गौण पहलू था, लेकिन अभय इसे मुख्य मानते थे—कि गाँधी का आन्दोलन ईश्वरवादी था। अभय ने बताया कि यद्यपि भारत में लाखों मन्दिर है, लेकिन उनका प्रबन्ध ठीक से नहीं हो रहा है, इसलिए पढ़े-लिखे नागरिक उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। मूल वैदिक संस्कृति में मन्दिरों का उद्देश्य आध्यात्मिक संस्कार का पोषण है। यदि भारत के मन्दिरों को सक्रिय आध्यात्मिक केन्द्रों के रूप में पुनर्संगठित किया जा सके, तो लोगों के विक्षुब्ध मनों को जीवन के उच्चतर मूल्यों में दीक्षित किया जा सकता है। अभय ने लिखा, "ऐसी शिक्षा और अभ्यास मनुष्य को ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति करने में सहायता दे सकते हैं, जिस ईश्वर के आदेश के बिना महात्मा गाँधी मानते थे कि एक तिनका भी नहीं हिल सकता।"

अभय ने गाँधी के हरिजन आन्दोलन का भी उल्लेख किया, जिसे लोग गाँधी का अछूतों को औरों के समान अधिकार दिलाने वाला मानवतावादी कार्य समझते थे। गाँधी ने उन्हें हरिजन अर्थात् 'भगवान् के जन' कहकर मान्यता दी थी। अभय ने बल दिया कि गाँधी के जीवन का यह भी एक प्रमुख आध्यात्मिक पहलू था। अभय का तर्क था कि अछूतों को केवल 'हरिजन' कह देने मात्र से अच्छा होगा कि निम्न वर्ग के लोगों के उत्थान के लिए व्यवस्थित कार्यक्रम बनाया जाये। इस कार्यक्रम की शिक्षा *भगवद्गीता* में दी गई है और भगवान् के एक सच्चे भक्त के निर्देशन में उसका कार्यान्वयन किया जा सकता था। अभय स्मारक-मंडल की ओर से यह कार्य स्वयं करने को तैयार थे। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि गाँधीजी के प्रयत्नों और उपलब्धियों का स्मारक बनाने में स्मारक-

मंडल ने उनके जीवन के प्रमुख आध्यात्मिक पहलुओं की उपेक्षा की तो "अन्य राजनीतिज्ञों की तरह उनकी स्मृति भी शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी।"

शायद लोगों ने अभय को एक और धनलोलुप अवसरवादी या साम्प्रदायिक धर्म-प्रचारक समझा हो। लेकिन अभय अपने को श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का एक तुच्छ सेवक मानते थे। महात्मा गाँधी के चरित्र में कुछ वैष्णव गुणों को देखकर अभय ने संसार को अपने आध्यात्मिक गुरु का सन्देश देने के अवसर का लाभ उठाया था और ऐसा करके उन्होंने गाँधीजी की अभ्यर्थना की, कीर्तन और आराधना में तथा दलितों का उत्थान कर उन्हें 'हरिजन' बनाने में अनुरक्त एक महान् भक्त के रूप में उनकी सराहना की।

• • •

जब अभय किसी कार्यवश दक्षिण भारत के नगर मदुराई गये, तो वहाँ उन्होंने एक अन्य ओषधि-विक्रेता मुथूस्वामी चेट्टी को अपने कुछ लेख दिखाए। चेट्टी उनसे प्रभावित हुए और उन्हें ऐसा लगा कि वे अपने धनाढ्य मित्र डॉ. अलगप्पा को, जो 'दक्षिण के बिड़ला' के रूप में प्रसिद्ध थे, उनके प्रकाशन में आर्थिक सहायता देने को तैयार कर सकते हैं। १९४८ ई. के अप्रैल में चेट्टी ने अभय को लिखा कि उन्होंने 'भगवत् इच्छानुसार जो कुछ किया है' उसमें सहायता करने की उन्हें प्रेरणा हुई है। उन्होंने अभय को *गीतोपनिषद्* की पूरी पाण्डुलिपि भेजने को लिखा, जिससे वे उसे मद्रास में डॉ. अलगप्पा के सामने प्रस्तुत कर सकें। श्री चेट्टी डॉ. अलगप्पा को पहले ही लिख चुके थे कि, "गीतोपनिषद् उच्च कोटि का ग्रंथ है और वह रायल साइज के १२०० पृष्ठों में आयेगा।" उन्होंने डॉ. अलगप्पा से आग्रह किया था कि धर्मिष्ठ जनता के लाभ के लिए वे उसको प्रकाशित कराएँ। उन्होंने यह भी उल्लेख कर दिया था कि अभय उसके प्रकाशन के लिए सन् १९४६ से प्रयत्न कर रहे थे।

डॉ. अलगप्पा ने श्रीमान् चेट्टी को तुरन्त उत्तर दिया कि पुस्तक के प्रकाशन में उनकी रुचि है, और श्रीमान् चेट्टी ने अभय को लिखा, "तो मैं आपकी सहायता करने ही वाला हूँ, यदि भगवान् मेरी सहायता करें।" जहाँ तक प्रकाशन के व्यावसायिक पक्ष का प्रश्न था, डॉ. अलगप्पा से बात करने की कोई जरूरत नहीं होगी क्योंकि, "यदि वे प्रकाशन को हाथ में लेते हैं, तो वह केवल लोकोपकार के लिए होगा।" सफलता की आशा करते हुए चेट्टी ने अभय को अलगप्पा से मिलने के लिए मद्रास बुलाया। उन्होंने लिखा, "ईश्वर की इच्छा से धार्मिक कर्तव्य-वश आपने जो कुछ किया है, उसके प्रकाशन की सारी व्यवस्था वे कर देंगे।" मद्रास में रहते हुए अभय पाण्डुलिपि दोबारा पढ़ सकते थे, उसका प्रूफ देख सकते थे और मुद्रण के विविध स्तरों पर नजर रख सकते थे। यह महान् अवसर था और अभय

उस अवसर को हाथ से जाने देने वाले नहीं थे। यदि पुस्तक प्रकाशित हो जाती है, तो श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की इच्छा की पूर्ति की, जो उनका उद्देश्य था, यह एक बहुत बड़ी विजय होगी।

लेकिन तभी सबसे बड़ी दुर्घटना हो गई। पाण्डुलिपि की चोरी हो गई। उसकी केवल एक ही प्रति थी, जिसे अभय ने घर में सुरक्षित रखा था। उन्होंने परिवार वालों और नौकरों से पूछा—किसी को पता नहीं था कि क्या हुआ। अभय किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये; सब किये कराए पर पानी फिर गया। उन्हें लगा कि इतने सारे महीने वे व्यर्थ परिश्रम करते रहे। यद्यपि उनके पास कोई प्रमाण नहीं था, लेकिन उनको सन्देह था कि यह कार्य उनके नौकर या लड़के का था; वे पाण्डुलिपि से शायद पैसा कमाना चाहते हों। लेकिन सब कुछ रहस्यमय बना रहा।

• • •

१९४९ ई. के दौरान अभय बँगला में लेख लिखते रहे। उन्हें वे अपने गुरुभाई बी. पी. केशव महाराज को भेजते थे और वे उन लेखों को *गौड़ीय पत्रिका* में छापते थे। संसार की समस्याओं पर विचार प्रकट करने का अभय का तरीका वही था, जो उनके आध्यात्मिक गुरु का रहा था। १९२२ ई. की पहली भेंट में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अभय के राष्ट्रवादी तर्कों का खंडन करते हुए बल देकर कहा था कि संसार का वास्तविक संकट न तो सामाजिक था, न राजनैतिक, न ही वह किसी अन्य भौतिक कारण से था; वरन् वह केवल दिव्य ज्ञान के अभाव के कारण था। अभय इसी मूल तथ्य का विस्तार करते हुए लिखते रहे। उनकी दलील यह कभी नहीं थी कि संसार के सामान्य विषयों की उपेक्षा की जाये, लेकिन वे बराबर बल देते रहे कि संकटों का समाधान तभी हो सकता है, जब नेता-वर्ग में भगवत्-चेतना जागेगी। यदि कृष्णभावनामृत को पहला स्थान दिया जाये, तो अन्य कार्य ठीक ढंग से चलाये जा सकते हैं। लेकिन कृष्णभावनामृत के बिना तथाकथित सभी समाधान केवल मूर्खता-पूर्ण होंगे।

अभय ने अपना पहला बँगला लेख कलकत्ता के समाचार-पत्र *अमृत बाजार* के इलाहाबाद संस्करण के सम्पादकीय से उद्धरण देते हुए आरम्भ किया। सम्पादक ने घोर खेद प्रकट किया था कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के बावजूद भी भारत की सबसे भयानक दुख-गाथा का अन्त नहीं हुआ।

> राष्ट्रीय सप्ताह आरम्भ हो गया है। जलियानवाला बाग और राजनैतिक दासता की दुखद स्मृतियाँ अब हमें कष्ट नहीं देती हैं। लेकिन हमारे दुखों का अन्त नहीं हो

> रहा है। विधाता का विधान ही ऐसा है कि मनुष्य को शान्ति नहीं मिल सकती। एक दुख का अन्त हुआ नहीं कि दूसरा पैदा हो जाता है। भारत राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र है, लेकिन वह ऐसी कठिनाइयों से ग्रस्त है, जो विदेशी शासन के समय की कठिनाइयों से कम गम्भीर नहीं हैं।

अभय ने इस सम्पादकीय में प्रकट विचार को सुधार के लिए बनाई गईं सांसारिक योजनाओं में निहित मूलभूत दोष के रूप में ग्रहण किया। उन्होंने संकेत किया कि भारत यद्यपि मुहम्मद गौरी (सन् १०५० ई.) के समय से विदेशी शासकों की राजनैतिक पराधीनता में रहा है, किन्तु उसके पहले तो यह दशा नहीं थी। उन दिनों भारत भगवत्-चेतना से समन्वित राष्ट्र था। जब भारत के नेताओं ने अपनी आध्यात्मिक धरोहर का त्याग कर दिया, तो उसका पतन हो गया।

इसलिए भारतीयों को जानना चाहिए कि उन्हें जो दंड मिल रहा है, वह भौतिक प्रकृति के कड़े नियमों द्वारा दिया जा रहा है। अभय ने कहा कि *अमृत बाजार* पत्रिका के सम्माननीय सम्पादक ने दुख के साथ लिखा है कि 'एक दुख का अन्त होते ही दूसरा दुख खड़ा हो जाता है,' परन्तु *भगवद्गीता* में यह बात बहुत पहले ही कही जा चुकी है।" इसी विषय पर १९४४ ई. के *बैक टु गॉडहेड* के लेखों और अपने बहुत से पत्रों में अभय लिख चुके थे कि परम भगवान् के प्रति उपेक्षा के कारण मनुष्य को जड़ प्रकृति के हाथों दंडित होना पड़ता है, जो परम भगवान् से नियंत्रित है। मानव समाचार-पत्रों में लेख लिख सकते हैं, अपनी बैठकों और सभाओं में प्रस्ताव पास कर सकते हैं और अपने वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा प्रकृति पर विजय पाने के प्रयत्न कर सकते हैं, लेकिन प्रकृति के नियमों पर विजय पाना असम्भव रहेगा। मनुष्यों द्वारा ज्यों ज्यों प्रकृति के दंडो से बचने के प्रयत्न होंगे, परम भगवान् उन्हें और गहरे भ्रम में धकेलते जायेंगे और अन्ततः उन्हें बुरी तरह विफलता प्राप्त होगी। अभय ने एक उपयुक्त बंगाली कहावत का उद्धरण दिया, "मैंने एक शिव-मूर्ति बनाने का प्रयत्न किया, किन्तु अन्त में वह वानर की मूर्ति बनकर रह गई।"

> संसार को दुखों से मुक्त करने और उसे सुख-शान्ति देने के लिए हमने अब अटामिक (अणु) बम का आविष्कार कर डाला है। उसकी प्रतिक्रिया रूप जो व्यापक विनाश निकट भविष्य में घटित हो सकता है, उसे सोचकर पाश्चात्य विचारक बहुत चिन्तित हो उठे हैं। कुछ लोग यह कहकर सान्त्वना देते हैं कि हम इस अणुशक्ति का उपयोग संसार में सुख लाने के लिए करेंगे। माया शक्ति द्वारा उत्पन्न की गई यह एक और गुत्थी है।

अभय ने स्पष्ट किया कि समस्या यह है कि संसार में कृष्णभावनाभावित भक्तों का अभाव है। भौतिक प्रकृति के वशीभूत नेताओं से संसार की समस्याओं का समाधान कभी सम्भव नहीं होगा। पाश्चात्य देशों में भौतिकतावादी माया का विशेष प्राधान्य है; भारतीयों को उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। किन्तु अभय ने भविष्यवाणी की कि कृष्णभावनामृत का प्रसार एक दिन पाश्चात्य संसार में होकर रहेगा।

> पाश्चात्य देशों में एकाकी सूक्ष्म आत्मा और परम पूर्ण परमात्मा के बीच जो सम्बन्ध है, उस पर कभी चर्चा नहीं हुई। न ही उनके कार्यकलापों और न ही अन्तिम पूर्ण स्थिति के विषय में कोई खोज हुई है। इसीलिए यद्यपि उन्होंने इतनी अधिक भौतिक उन्नति कर ली है, तथापि वे ऐन्द्रिय भोग के जलते विष में तड़फड़ा रहे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि भारत के पास सच्ची शान्ति का जो सूत्र है वह एक दिन उन तक पहुँचेगा।

अभय के लेख *गौड़ीय पत्रिका* में नियमित रूप से छपने लगे। उनके गुरु भाइयों को वे पसन्द आये; भौतिक मनोवृत्ति का उनके द्वारा खंडन श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के खंडन की याद दिलाता था। *भगवद्गीता* की जो असुर की धारणा थी, वह अभय के हाथों केवल एक पौराणिक या कल्पित शत्रु का वर्णन न रही, वरन् वर्तमान हिटलर, चर्चिल या भारत के प्रधानमंत्री के रूप में भी वह साकार हो उठी। लेकिन जैसाकि अभय ने संकेत किया, वे जो भ्रष्ट नेताओं का खंडन कर रहे थे, वह उनकी ओर से नहीं था; वे केवल कृष्ण के शब्दों को दुहरा रहे थे।

• • •

सन् १९५०-५१ ई. के बीच वे पत्र लिखते रहे, उनका प्रयत्न विभिन्न संस्थाओं और नेताओं तक अपनी बात पहुँचाने का था। उन्होंने विश्व-शान्ति-समिति (वर्ल्ड पैसीफिस्ट कमिटी), भारत के राष्ट्रपति और शिक्षा-मंत्री को लिखा। उन्होंने इंडियन काँग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम को लिखा, जिसकी ओर से जवाब आया कि उन्होंने उसे भूल से लिख दिया है। उन्होंने बम्बई की आल रिलीजन्स कान्फरेंस के एक अधिकारी को लिखा कि उनकी गलत पहुँच के कारण कांफरेंस से कोई व्यावहारिक नतीजा नहीं निकलेगा। "व्यावहारिक समाधान तो परम भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य सन्देश में निहित है, जो उन्होंने *भगवद्गीता* में दिया है।"

१४ सितम्बर १९५१ को उन्होंने नई दिल्ली-स्थित अमेरिका के दूतावास द्वारा

प्रकाशित *अमेरिकन रिपोर्टर* के डेनियल बेली को पत्र लिखा। उसमें उन्होंने बताया कि भारत के ऋषियों-मुनियों द्वारा अनुभूत परम सत्य के स्वरूप को समझने के लिए जो दर्शन भारत में विकसित हुआ है, वह पूर्व और पश्चिम को मिलाने के प्रयत्नों से कहीं ऊँचा है। श्रीमान् बेली ने उत्तर दिया कि वे पाश्चात्य संसार पर पड़ने वाले पूर्व के दार्शनिक और धार्मिक प्रभाव से परिचित थे; उन्होंने न्यूयार्क नगर-स्थित एक योगाश्रम की प्रगति का उदाहरण दिया, जिसका उन्होंने लिखा, अमेरिका के प्रोटेस्टेंटों पर किंचित् प्रभाव था। लेकिन जब अभय ने जानना चाहा कि क्या उनका एक लेख *अमेरिकन रिपोर्टर* में प्रकाशित हो सकता है, तो श्रीमान् बेली ने उत्तर दिया, "यदि *अमेरिकन रिपोर्टर* में हम *गीता* को पर्याप्त स्थान देते हैं, तो यह न्यायोचित होगा कि हम अन्य विचारधाराओं को भी उतना ही स्थान दें और हमारी इच्छा न किसी का खंडन करने की है न मंडन करने की, वरन् उनको ठीक समझने में सहायता करने की है...।" आगे, एक और पत्र में अभय ने श्रीमान् बेली के इस मत से मतभेद प्रकट किया कि लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि धर्म की वे अपनी निजी व्याख्या करें, "कम बुद्धि वाले लोग हमेशा उन लोगों से मार्ग-दर्शन प्राप्त करते हैं, जो जीवन के सभी क्षेत्रों में उनसे आगे हैं।"

अभय ने डेट्रायट-स्थित फोर्ड फाउन्डेशन तक को लिखा और एक स्टाफ सहायक ने उन्हें उत्तर दिया कि, "खेद के साथ आपको सूचित करना है कि आपने जो बुद्धिमान लोगों की एक संस्था कायम करने का सुझाव दिया है, उसका प्रतिपादन हम नहीं कर सकते। फोर्ड फाउन्डेशन के पास कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं है, जिसमें आपके द्वारा वर्णित आपके विशिष्ट विचारों का समावेश किया जा सके।"

यद्यपि अभय के अधिकतर सुझाव अस्वीकार कर दिए जाते थे, लेकिन कभी-कभी उन्हें सराहना के पत्र भी मिलते थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर, डॉक्टर मुहम्मद सईद, पी-एच. डी. ने लिखा कि "ऐसा लगता है कि आपने प्राचीन भारत की सार्वभौमिक शिक्षाओं को आत्मसात् कर लिया है, जो सचमुच... प्रशंसनीय है।" उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने उत्तर दिया, "आप उत्कृष्ट कार्य कर रहे हैं, क्योंकि इससे उत्कृष्ट कुछ नहीं है कि मनुष्य भगवान् में चित्त लगाए।"

अभय अपने पत्रों में लोगों को न केवल परामर्श देते, वरन् वे इस बात का भी संकेत करते कि वे व्यावहारिक सहायता भी दे सकते हैं। यदि उन्हें किसी संस्था की सहायता मिल जाये, तो वे बहुत सारी चीजें करने को तैयार थे : वे कक्षा-शिक्षण कर सकते थे; मन्दिरों की व्यवस्था देख सकते थे; मन्दिरों में पूजा करना सिखला सकते थे, भक्तों को दीक्षा दे सकते थे और *भगवद्गीता* के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए तरह-तरह के क्षेत्र-कार्य का आयोजन कर सकते थे। साधारणतया वे विस्तार से यह नहीं बताते थे कि कोई चीज

कैसे की जानी चाहिए, लेकिन वे वर्तमान कार्य-विधियों के दार्शनिक दोषों और वैदिक साहित्य के अनुकूल कार्य करने की श्रेष्ठता की ओर इंगित करते थे। अपने आध्यात्मिक गुरु की कृपा से वे *भगवद्गीता* के ज्ञान का प्रयोग किसी भी परिस्थिति में करना जानते थे; यदि कोई उधर रुचि प्रदर्शित करता, तो वे *भगवद्गीता* के अनुसार कार्य करने की श्रेष्ठता उसे सिखा सकते थे।

एक बार अभय ऐसी सभा में शामिल हुए, जिसमें एक सुप्रसिद्ध उद्योगपति ने अपने कारखाने में मजदूरों और मालिकों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों पर बल दिया। ऐसी सभा में उपस्थित रहने के पश्चात् अभय ने उसे एक लम्बा पत्र लिखा और सामूहिक हरे कृष्ण गान से उत्पन्न हो सकने वाले अच्छे प्रभाव के बारे में विचार करने का सुझाव दिया। चूँकि कारखाने में मजदूरों का एक विशेष क्लब और विश्राम कक्ष था, इसलिए अभय ने सुझाया कि मजदूर उसमें एकत्र होकर हरे कृष्ण का कीर्तन किया करें।

अभय हर एक से जोर देकर कृष्ण के प्रति समर्पण होने के लिए कहते, लेकिन अधिकतर लोगों की अपनी निजी विचार-धाराएँ थीं और वे अभय को साम्प्रदायिक और धर्मान्तरकारी समझते। लेकिन अभय ने लिखा कि *भगवद्गीता* सार्वजनीय है और भगवान् को किसी भी कार्यक्रम से बाहर नहीं रखे जा सकते; धर्मनिरपेक्ष राज्य में भी नहीं। सभी जीवों के पिता होने के कारण कृष्ण के अधिकार-क्षेत्र में सभी कार्यक्रम, संगठन, और प्रशासन आते हैं। विशेषकर भारतीयों को *भगवद्गीता* के सार्वभौमिक विस्तार के महत्त्व को समझना चाहिए।

यद्यपि अभय के सुझावों के पीछे हमेशा कार्य की कोई न कोई योजना होती थी, लेकिन पहले वे पत्र-व्यवहार करने वाले व्यक्ति की रुचि का पता लगाते थे। उन्हें कोई विशेष रुचि का व्यक्ति नहीं मिला, और बार-बार उनके सुझाव अस्वीकार कर दिये जाते थे, लेकिन वे निरुत्साहित कभी नहीं हुए; वे हमेशा किसी सहानुभूतिकर्ता के मिलने की आशा लगाए रखते। वे अपने सभी पत्रों और उनके उत्तरों की प्रतिलिपियाँ सुरक्षित रखते थे। किसी पत्र-व्यवहारी की ओर से सराहना का एक शब्द या रुचि का रंच-संकेत उनके लिए काफी होता और वे एक दूसरा विचारशील पत्र लिख डालते।

भगवान् चैतन्य के लक्ष्य के प्रति गौड़ीय मठ से नेतृत्व की अपेक्षा किये बिना ही उनमें गहरे समर्पण का भाव विकसित हो गया था। उन्हें अब भी आशा थी कि उनके गुरु भाई आपस में मेल करके प्रचार-कार्य में लग जायेंगे, लेकिन उन्होंने अपनी तनिक भी शक्ति का उपयोग मठों में नहीं किया, क्योंकि ऐसा करने का मतलब था, किसी न किसी गुट में शामिल होना। गौड़ीय मठ के आन्तरिक कलह से बचते हुए अभय अकेले ही पत्र लिखने का अभियान चलाते रहे। वे स्वयं को *भगवद्गीता* का प्रचारक और *बैक टू गॉडहेड*

पत्रिका का सम्पादक कहकर अपना परिचय देते थे।

• • •

सन् १९४८ ई. में अभय ने अपनी लखनऊ की फैक्टरी बन्द कर दी। कर्मचारियों का वेतन देने में वे पिछड़ गये थे और सन् १९४६ ई. से पिछला किराया किश्तों में चुका रहे थे। लेकिन जब बिक्री कम हो गई, तब फैक्टरी को चलाते रहना असम्भव हो गया। वे सब कुछ खो बैठे।

श्रील प्रभुपाद : *मैंने लखनऊ में एक बड़ी प्रयोगशाला स्थापित की। वे सुनहरे दिन थे। कारोबार में आशातीत उन्नति हुई। रासायनिक उद्योग का हर आदमी यह जानता था। लेकिन उसके बाद क्रमशः हर चीज में ह्रास हो गया।*

कुछ परिचितों की सहायता से उन्होंने इलाहाबाद में एक छोटी-सी फैक्टरी खोली, उसी नगर में जहाँ पन्द्रह साल पहले उनकी प्रयाग फार्मेसी बैठ गई थी। वे अपने पुत्र वृन्दावन के साथ इलाहाबाद गये और दवाएँ बनाने का काम वहाँ जारी रखा। परिवार के बाकी लोग बनर्जी लेन, कलकत्ता में ठहरे रहे, जबकि अभय की यात्राएँ चलती रहीं। लेकिन अब वे घर से कभी-कभी लगातार महीनों अनुपस्थित रहते।

और तब उन्होंने दूसरी बार एक स्वप्न देखा। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती उनके सामने प्रकट हुए; वे पुनः संकेत से बुला रहे थे कि अभय संन्यास ले ले। और अभय को पुनः उस स्वप्न की उपेक्षा करनी पड़ी। वे गृहस्थ थे और उनकी बहुत-सी जिम्मेदारियाँ थीं। संन्यास लेने का मतलब हर वस्तु को त्याग देना था। उन्हें धनोपार्जन करना था। उनकी पाँच संतानें थीं। उन्होंने सोचा, "गुरु महाराज मुझे संन्यास लेने को क्यों कह रहे हैं?" अब यह सम्भव नहीं था।

इलाहाबाद का धंधा असफल रहा। उन्होंने अपने सेवक गौरांग को लिखा, जो उनके पास फिर आना चाहता था, "इस समय धंधे की हालत बहुत अच्छी नहीं है। जब हालत में सुधार होगा और यदि उस समय तुम्हें अवकाश होगा, तो मैं तुम्हें बुलाऊँगा।" उन्होंने जी-जान से काम किया, लेकिन परिणाम अच्छा नहीं हुआ।

जैसाकि वे हर वस्तु को देखते थे, अभय ने वर्तमान परिस्थितियों को भी धर्मशास्त्र की दृष्टि से देखा। और उन्हें *श्रीमद्भागवतम्* का श्लोक स्मरण आये बिना न रहा :

यस्याहं अनुगृह्णामि
हरिष्ये तद् धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्ति अस्य
स्वजना दुःख-दुःखितम्॥

"जब मेरी किसी पर विशेष कृपा होती है, तो मैं उसकी सारी भौतिक सम्पत्ति का धीरे-धीरे हरण कर लेता हूँ। तब उस दुख से पीड़ित दीन-हीन मनुष्य का उसके सभी मित्र और सम्बन्धी त्याग कर देते हैं।"

अभय ने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के मुख से यह श्लोक सुना था। अब उन्हें वह प्राय: याद आता था। उन्होंने यह मान लिया कि उनकी वर्तमान परिस्थितियों के नियामक भगवान् कृष्ण थे, जो उन्हें ऐसी असहाय अवस्था में धकेलकर कृष्णभावनामृत के प्रचार के लिए तैयार कर रहे थे।

श्रील प्रभुपाद : *किसी न किसी प्रकार भगवान् चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रचार करने की मेरी इच्छा बढ़ती गई और दूसरा पक्ष निर्बल होता गया। मैं उधर से विमुख नहीं था, लेकिन कृष्ण ने मुझे विवश किया, "तुम्हें इसका त्याग करना ही होगा।"* इतिहास *जानता है कि किस प्रकार यह (सांसारिकता के प्रति मेरा लगाव) कम होता गया, कम होता गया, कम होता गया।*

श्रीमद्भागवतम् में रानी कुन्ती ने भी प्रार्थना की थी, "मेरे प्रिय भगवान् कृष्ण, आपको सहज ही पाये जा सकते हैं, लेकिन केवल उन्हीं लोगों द्वारा जो हर तरह से रिक्त हो गये हैं। जो भौतिक उन्नति के पथ पर हैं और सम्माननीय कुल, अपार सम्पत्ति, उच्च शिक्षा और शारीरिक सौंदर्य के बल पर आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे निष्कपट भाव से आपकी संगति में नहीं जा सकते।"

श्रील प्रभुपाद : *अतएव सन् १९५० में मैं व्यावहारिक रूप से निवृत्त हो गया। लेकिन मैंने एकदम अवकाश नहीं लिया—जो थोड़ा-बहुत धंधा चल रहा था, उससे कुछ सम्पर्क बना रहा। धीरे-धीरे धंधा लगभग समाप्त हो गया। जो कुछ रह गया, वही ठीक था। तुम्हें जो कुछ करना हो, करो।*

• • •

अभय की पत्नी अपने पुत्रों के साथ ७२, महात्मा गांधी रोड स्थित अपने पिता के घर चली गईं। उनका तर्क था कि उनका आर्थिक भरण-पोषण खतरे में पड़ता जा रहा था।

अभय का अधिकतर समय घर से बाहर बीतने लगा। वे परिवार से क्रमश: कटते जा रहे थे। जब कई महीनों के बाद वे अपनी पत्नी और बच्चों से मिलते, तो उनके ससुर उनकी आलोचना करते : "तुम हमेशा बाहर रहते हो। हमेशा भगवान् की पूजा में लगे रहते हो। परिवार की देख-भाल नहीं कर रहे हो।" अभय से जब भी हो सकता, वे परिवार के लिए कुछ धन भेज देते।

श्रीमान् सुधीर कुमार दत्त (अभय के भतीजे) : *मैं कभी-कभी देखता कि वे*

(अभय) किस प्रकार बहुत सी बातों के बारे में सोचते रहते—परिवार के बारे में, लिखने के बारे में और धंधे को उत्तरोत्तर बढ़ाने के बारे में। "क्या करूँ, क्या करूँ?" वे धंधे से अधिक धन कमाने के बारे में गम्भीरता से सोचा करते। लेकिन इसका मतलब था कि वे धंधे को अधिक समय दें। और लिखना तो वे कभी छोड़ नहीं सकते थे। वे अधिक से अधिकतर लिखते रहे और कभी-कभी लोग उन्हें अपशब्द भी कह बैठते थे, "अरे, तुम तो धार्मिक चीजें लिखने में लगे रहते हो। केवल भगवान् के बारे में विचार-मग्न रहते हो। तुम्हारे परिवार का भरण-पोषण कौन करेगा? अपने परिवार के लिए तुम क्या करोगे?" कभी-कभी अभय दलील देते, "इस परिवार ने मेरे लिए क्या किया है? मैं भगवान् को क्यों विस्मृत कर दूँ? जो मैं कर रहा हूँ, वही वास्तविक है। आप नहीं समझ सकते कि मैं क्या कर रहा हूँ।"

एक बार कलकत्ता जाने पर अभय अपने ससुर के घर पर रुके, जहाँ उन्हें उनके अपने कमरे में ठहराया गया। जब उनकी पत्नी ने भोजन परोसा, तो उन्होंने देखा कि हर चीज बाजार से खरीदी हुई है। उन्होंने पूछा, "यह सब क्या है?"

राधारानी ने उत्तर दिया, "आज रसोइया बीमार है।"

अभय ने सोचा, "अच्छा होगा कि हम पत्नी के पिता के घर में न रहें, नहीं तो वह और अधिक बिगड़ जायेगी।" इसलिए उन्होंने अपने परिवार को चेतल स्ट्रीट-स्थित एक अन्य ठिकाने पर पहुँचा दिया। वहाँ वे परिवार के साथ कभी-कभी कुछ महीने रुकते। वे लेख लिखने में लगे रहते और काम धंधे में कम से कम समय लगाते। लेकिन उनका अधिकतर समय इलाहाबाद में बीतता।

• • •

इलाहाबाद में अभय, जो अब चौवन वर्ष के हो गये थे, वानप्रस्थ जीवन बिताते थे। वे परिवार और व्यवसाय से सम्बन्धित उन सभी क्रियाकलापों के प्रति उदासीन हो गये थे, जो एक गृहस्थ के लिए उत्तरदायित्व और प्रसन्नता के प्रमुख विषय होते हैं।

अपने लेखों में अभय कई बार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के चार आश्रमों या वैदिक समाज के आध्यात्मिक विभागों के बारे में लिख चुके थे। पहले विभाग ब्रह्मचर्य आश्रम में मां-बाप किशोर बालक को गुरु के पास या गुरुकुल में भेजते हैं, जहाँ वह अपने गुरु के निर्देशन में वैदिक साहित्य का अध्ययन करता हुआ सादा जीवन बिताता है। इस तरह, वह अपने बचपन और किशोरावस्था में सादगी और आध्यात्मिक ज्ञान के सिद्धान्तों को सीखता है, जो उसके पूरे जीवन का आधार बनते हैं।

इक्कीस साल की अवस्था में ब्रह्मचारी विवाह कर सकता है और इस प्रकार गृहस्थ

आश्रम नाम के दूसरे आश्रम में प्रवेश करता है; या भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की तरह वह आजीवन ब्रह्मचारी बना रह सकता है। अपनी किशोरावस्था में अभय ब्रह्मचारी थे और अपने माता-पिता से उन्होंने कृष्ण के प्रति भक्ति के सिद्धान्तों को आत्मसात् किया था। यद्यपि वे घर में रहे थे, लेकिन उनका पालन-पोषण ब्रह्मचारी के समान हुआ था। और इक्कीस वर्ष की अवस्था में विवाह होने पर उपयुक्त समय पर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट हुए थे। गौरमोहन के उदाहरण से उन्होंने जान लिया था कि पारिवारिक जीवन बिताते हुए भी कोई कृष्ण का भक्त कैसे बना रह सकता है। और वैष्णवों की भाँति अभय और उनकी पत्नी भौतिक पारिवारिक जीवन के अतिवादों से हमेशा बचते रहे थे।

पचास वर्ष का हो जाने पर माना जाता है कि मनुष्य को पारिवारिक कार्यकलापों से अलग हो जाना चाहिए, और यही अवस्था वानप्रस्थ कहलाती है। वानप्रस्थ आश्रम में पतिपत्नी दोनों समझौता कर लेते हैं कि वे और अधिक यौन-संभोग नहीं करेंगे; वे साथ रह सकते हैं, लेकिन बल आध्यात्मिक भागीदारी पर होता है। वानप्रस्थी के रूप में वे भारत के विभिन्न तीर्थस्थानों की यात्रा एक साथ कर सकते हैं; यह अवस्था भौतिक संसार से अनिवार्य प्रस्थान की तैयारी के रूप में होती है। इस प्रकार वैदिक आश्रम मनुष्य को इस योग्य बनाते हैं कि वह सांसारिक जीवन पूरी तरह व्यतीत कर लेने के बाद जन्म-मरण के चक्र का अन्त करके शाश्वत आध्यात्मिक लोक की प्राप्ति कर सके। पचास वर्ष के मनुष्य को वृद्धावस्था को प्राप्त होते हुए अपने शरीर को देखकर यह जान लेना चाहिए कि अनिवार्य मृत्यु निकट आ रही है और समझदारी इसी में है कि उसके लिए तैयारी की जाये।

अन्तिम अवस्था, संन्यास आश्रम में मनुष्य अपनी पत्नी को एक सयाने लड़के की देख-रेख में रख देता है और अपने को पूर्ण रूप से परम भगवान् की सेवा में समर्पित कर देता है। पहले संन्यास आश्रम का तात्पर्य होता था, हिमालय में तपस्या का एकाकी जीवन बिताना। किन्तु गौड़ीय वैष्णव परम्परा में श्रील भक्तिसिद्धान्त ने प्रचार-कार्य पर बल दिया था।

यद्यपि अभय ने औपचारिक रूप से तय नहीं किया था कि चार आश्रमों में से वे किस आश्रम में हैं, लेकिन वे गृहस्थ की अपेक्षा वानप्रस्थी जीवन यापन करते अधिक लगते थे। उन्होंने काम-धंधे में अपनी असफलताओं और अरुचिकर पारिवारिक जीवन को कृष्ण का वरदान माना, जो उन्हें पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्त करके श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती द्वारा आदिष्ट प्रचार-कार्य की ओर पूर्णरूपेण उन्मुख कर रहा था।

• • •

इलाहाबाद में अभय ने इतना धन इकट्ठा कर लिया कि वे *बैक टु गॉडहेड* का प्रकाशन पुनः कर सकें, और १९५२ ई. की फरवरी में ५७ बी, कैनिंग रोड के उनके सम्पादकीय कार्यालय (और आवास) से आठ साल बाद उसका पहला अंक प्रकाशित हुआ। जैसाकि पहले होता था, इस बार भी लेखन, टंकण, सम्पादन, मुद्रक से मिलना-जुलना, और अन्त में हाथ से वितरण तथा डाक से भारत के सम्मानित नेताओं को प्रेषण, सब कुछ उन्हें ही करना पड़ा। उन्हें लगा कि इलाहाबाद में या अन्यत्र उनके रहने का यही वास्तविक उद्देश्य था। यह धन का सर्वोत्तम उपयोग था और यही मानवीय जीवन का उद्देश्य भी था कि उसे परम भगवान् के गुणगान में पूरी तरह से लगाया जाये। अन्य सब कुछ अस्थायी और शीघ्र नष्ट होने वाला था।

जब अभय अपने परिवार से मिलने कलकत्ता जाते थे, तो उनके पुराने मित्र उनके कमरे में इकट्ठे हो जाते थे और वे *भगवद्गीता* पर प्रवचन करते और शिक्षण देते थे। अभय अपनी पत्नी और परिवार को चर्चाओं में भाग लेने के लिए बुलाते थे, लेकिन वे ऊपर के कमरे में हठपूर्वक बैठ जाते और प्रायः मानो उनके प्रवचन की अवज्ञा करने के लिए चाय पीने में लग जाते थे। अभय उनका पालन कर रहे थे; वे अब भी उनसे साहचर्य बनाए हुए थे, लेकिन वे प्रवचन पर तुले थे और वे लोग परिवार में इसके लिए सुविधा नहीं प्रदान कर रहे थे। यदि अभय को पारिवारिक जीवन में बना रहना है, तो उनकी पत्नी और लड़कों को इस बात को स्वीकार करना और उससे प्रसन्न होना जरूरी था कि वे पूर्ण-रूप से प्रचारक हो रहे हैं। उन्हें समझना था कि अभय के जीवन का मुख्य कार्य उनके आध्यात्मिक गुरु के उद्देश्य की पूर्ति है। उनके इस परिवर्तन के प्रति वे मात्र उदासीन नहीं रह सकते। वे इस बात का आग्रह नहीं कर सकते कि अभय एक सामान्य व्यक्ति है। अभय अपनी पत्नी को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करते रहे; और आशा करते रहे कि प्रचार-कार्य में धीरे-धीरे वे उनकी अनुगामिनी हो जायेंगी। लेकिन उन्हें अपने पति के प्रचार में जरा भी रुचि नहीं थी।

और वे परिवार, रासायनिकों और धन के बारे में चिन्ता करने में अपना समय क्यों गँवाएँ? उनके सम्बन्धी आलोचना भले ही करें, लेकिन *बैक टु गॉडहेड* मनुष्य जाति की सबसे बड़ी सेवा थी जो वे कर सकते थे। भगवान् चैतन्य के पूर्ववर्ती और एक महान् आध्यात्मिक गुरु माधवेन्द्रपुरी ने सांसारिक आलोचनाओं के प्रति भक्तों की उदासीनता के बारे में लिखा था :

> हे देवताओं और पूर्वजों, मुझे क्षमा करना। आपकी प्रसन्नता के लिए और अधिक भेंट चढ़ाने में मैं असमर्थ हूँ। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि यदु के

> महान् वंशज और कंस के महान् शत्रु (भगवान् कृष्ण) को सर्वत्र और सदैव स्मरण मात्र करके पापों की प्रतिक्रियाओं से मैं अपने आपको स्वतंत्र करूँ। मैं समझता हूँ, मेरे लिए यही पर्याप्त है। इसलिए और अधिक प्रयत्नों से क्या लाभ?
>
> तीव्र-बुद्धि वाले नैतिकतावादी मुझ पर भ्रमित होने का आरोप लगाएँ; मुझे उसकी चिन्ता नहीं। वैदिक क्रियाओं के विशेषज्ञ दिग्भ्रमित कहकर मुझे बदनाम कर सकते हैं; मित्र और सम्बन्धी मुझे हताश कह सकते हैं; मेरे बंधु मुझे मूर्ख कह सकते हैं; सम्पन्न धनलोलुप मुझे पागल बता सकते हैं और प्रबुद्ध दार्शनिक दावा कर सकते हैं कि मैं घमंडी हूँ; तब भी मेरा मन गोविन्द के चरणकमलों की सेवा के संकल्प से रंच-मात्र भी नहीं हटता, चाहे मैं वैसा करने में असमर्थ होऊँ।

वे परिवार की छोटी-मोटी समस्याओं को लेकर समय नष्ट क्यों करें, जबकि उनके पास भारत और संसार की समस्याओं के समाधान थे? *भगवद्गीता* का ज्ञाता होने के रूप में उन्होंने सोचा कि उनका पहला दायित्व युद्ध, भूखमरी, अनैतिकता, अपराधजन्य विकट संकटों के समाधान देना था, जो सभी नास्तिकता के लक्षण थे। और यदि ऐसे कार्य के प्रति उनके समर्पण का अर्थ यह था कि छोटे-मोटे अन्य दायित्वों की उपेक्षा होगी, तो यह कोई हानि की बात नहीं थी।

• • •

मार्च १९५२ ई. में अभय ने *बैक टु गॉडहेड* का दूसरा अंक निकाला। उसका अधिकतर भाग श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती और उनके पिता श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के जीवन चरित पर अभय द्वारा लिखित एक लेख को समर्पित था।

> वे (भक्तिविनोद ठाकुर) उन छद्म-अध्यात्मवादियों के सिद्धान्तों का कड़ा प्रतिवाद करते थे, जिनका प्रचार भगवान् चैतन्य के नाम पर हो रहा था। सरकार की सेवा में एक बड़े अधिकारी के पद पर रहते हुए ही उन्होंने अपने साहित्यिक लेखों द्वारा सुधारवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया। गृहस्थ का जीवन बिताते हुए और मेजिस्ट्रेट के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने बंगाली, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं में अनेक तरह की पुस्तकें लिखीं, जिनमें भगवान् चैतन्य के प्रति विशुद्ध भक्ति का सच्चा चित्र अंकित था। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज को उनके बचपन से ही श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के आन्दोलन के लिए प्रेरणा मिली। उन्होंने भक्तिविनोद ठाकुर के निजी सचिव के रूप में कार्य किया और इस

रूप में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने भगवान् चैतन्य के उद्देश्य के प्रचार के लिए उन्हें अपने अभिवक्ता की दिव्य शक्ति प्रदान की। और इस प्रकार श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के निधन पर श्रील सरस्वती ठाकुर ने उस सुधारवादी आन्दोलन का कार्य-भार सँभाला।

अपना मासिक पत्र निकालने में व्यस्त अभय अन्य कार्यों में ऊपरी मन से लगे रहे। कभी-कभी वे व्यवसाय के लिए यात्रा पर निकल जाते थे या परिवार को देखने के लिए इलाहाबाद से रात की गाड़ी पकड़कर कलकत्ता पहुँच जाते थे। जब डिब्बे में भीड़ न होती, तो जब अन्य लोग सो रहे होते, वे लाइट जला लेते थे। रात की गाड़ी से यात्रा करने से उन्हें चिन्तन करने या लिखने का भी अच्छा अवसर मिल जाता था। कभी-कभी वे केवल कुछ घंटे सोते और फिर उठकर बैठ जाते और खिड़की से बाहर देखने लगते कि रात शेष है। डिब्बे के प्रकाश की किरणें परिवर्तित होकर उन पर पड़तीं और खिड़कियों में उनके चेहरे की छाया दिखाई देती।

बारह घंटे की यात्रा आधी पूरी होते-होते आकाश में प्रकाश फूटने लगता; आकाश का रंग पहले भूरा होता, फिर हल्का नीला और तब उसमें सफेद बादल दिखाई देने लगते। कस्बों के प्रकाश दिखाई पड़ने लगते और गाड़ी चेतावनी का भोंपू बजाने लगती। जब गाड़ी किसी स्टेशन पर मंद होकर रुकती तो चाय बेचने वाले 'चाय, चाय, चाय' चिल्लाते डिब्बों से साथ-साथ भागने लगते। उनकी 'चाय' की संगीतमय ऊँची लहरियों से कान भर जाते। और जबकि सैकड़ों यात्री सवेरे की चाय की चुस्कियाँ लेने में लगे होते, चाय की गंध से वातावरण ओत-प्रोत हो जाता।

अपने बीस-वर्ष से अधिक की विस्तृत ट्रेन-यात्रा में अभय ने पाया कि सिगरेट पीने वालों और अकेले यात्रा करने वाली स्त्रियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। भारत का पाश्चात्यीकरण हो रहा था। और राष्ट्रीय नेता इसके लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे थे—अंधे अंधों का मार्गदर्शन कर रहे थे। वे भगवान् के बिना ही भगवान् का राज्य चाहते थे। वे कृष्ण के बिना ही प्रगतिशील औद्योगिक भारत चाहते थे। खिड़की से वे देखते कि बिना जोते विस्तृत खेत खाली पड़े हैं; इतने पर भी लोग भूखे थे।

अभय कभी-कभी समाचार-पत्र पढ़ते और उसमें से कोई ऐसा लेख फाड़ लेते, जिसका *बैक टु गॉडहेड* में उत्तर देने की उन्हें आवश्यकता प्रतीत होती या जो लेख लिखने के लिए उनमें उन्मेष पैदा करता। वे इस बात पर चिन्तन करते कि लोगों के पास सहायता के लिए कैसे जाया जाये, किन लोगों के पास जाया जाये और कृष्णभावना वाले भक्तों का संघ कैसे स्थापित किया जाये। न केवल भारत में वरन् सारे संसार के लोग कृष्णभावनामृत

को अपना सकते थे। *चैतन्य-भागवत* ने भविष्यवाणी की थी कि एक दिन आयेगा, जब भगवान् चैतन्य का नाम हर गाँव और कस्बे में पहुँच जायेगा। श्रील भक्तिसिद्धान्त की यही इच्छा थी। उन्होंने प्रचारक इंगलैंड भेजे थे, लेकिन वे सम्राट का केवल नयाचार शिष्टाचारिक दर्शन कर सके, पंक्ति में खड़े रहे, ताज के सामने नतमस्तक हुए और तब पाश्चात्य लोगों में बिना कोई परिवर्तन लाए भारत वापस लौट आये। अभय ने *बैक टु गॉडहेड* विदेशों में भेजने के बारे में सोचा। उनके एजेंटों, थैकर, स्पिक एंड कम्पनी के सम्पर्क अमेरिका और योरप में थे। सारे संसार के लोग अंग्रेजी पढ़ते थे और उनमें से कुछ को *भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* के विचार निश्चय ही पसन्द आयेंगे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती यही चाहते थे। कृष्णभावनामृत केवल भारत के लिए ही नहीं था। यह भारत का सबसे बड़ा उपहार था और यह सबके लिए था।